



**पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा
साधर्मीओं को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र**

(१४)

कलकत्ता

१-२-१९५४

धर्मप्रेमी... निहालचंद्र का धर्मस्नेह।

आशा है कल दिन मुक्तिदूत श्री सद्गुरुदेव व मुमुक्षुगण राजकोट सकुशल पहुँच गये होंगे। लोक में अलौकिक क्रांति फैल रही होगी।

आपका पत्र मिला। मांगलिक विहार के आदि व अंत स्थान गुरुदेवश्री की जन्मभूमि उमराला का चित्रित दैनिक अंक भी मिला। यहाँ इस भक्तिभावपूर्ण अंक को मुमुक्षुओं के बीच वांचने का शुभयोग भी मिला। सबों ने हृदय से रसास्वादन किया।

रह-रहकर विकल्प होता रहता है कि कमसे कम एक दो वर्ष निरंतर अलौकिक सत्पुरुष के सहवास में रहना होवे, परंतु प्रारब्ध अभी ऐसा नहीं दिखता है। विहार में जूनागढ़ आदि का योग शायद नहीं है।

मुझे व्यावहारिक अनुकूलता रहा करे, ऐसी आपकी सद्भावनाओं को मैं भलीभाँति समझता हूँ; कारण अबके आपके अधिक नज़दीक में रह चुका हूँ व आपके प्रति के मेरे विकल्प इसके साक्षी होते रहते हैं। फिर भी ऐसी भावनाओं को मुख्यदृष्टि स्वीकार नहीं करती, सहज ही निषेध वर्तता जाता है। भावना एक समय की व उस ही समय 'हम' इससे अधिक। स्वाभाविक न होनेसे एक दूसरे के आश्रित, विचित्रता धरती हुई राग-द्वेष में परिणत हो जाये या वीतरागता में, ऐसा स्वभाव है; राग भी नित्य नहीं रहता।

अहो! बिना विकल्प का कोरा आनंद ही आनंद! त्रिकाली गुब्बारे को पूर्ण फुलाये बिना (विकसित किये बिना) अब एक क्षण भी चैन नहीं है! ध्यानस्थ अवस्था में बैठा हुआ, अथाह ज्ञानसमुद्र व उसमें सहज केलि! ऐसा अनुभव मानो 'मैं ही मैं हूँ,' आनंद की घूँट पिये जा रहा हूँ-अरे रे! वृत्ति आनंद से च्युत होने लगी। पर वाह रे पुरुषार्थ! तूने साथ रही उग्रता का संकल्प किया, मानो अथाह की थाह सैदव के लिये एकबार में ही पूरी ले लगा। प्रदेश-प्रदेश व्यक्त कर देगा। सहज आनंद से एक क्षण भी नहीं हटने देगा। पर अरे योग्यता! तूने पूर्णता के संकल्प का साथ नहीं देकर अंत में च्युत करा ही तो दिया, तो फिर इसका दण्ड भी भुगतना पड़ेगा।

बहिनों की सद्भावनाएँ देखकर उनकी इच्छानुसार अपनी व्यावहारिक अनुकूलता आदि का समाधान भी करना होगा। संक्षेप में बात यह है कि आर्थिक स्थिति पहले से साधारणतया अच्छी है। सोनगढ़ समय पर पहुँचने के वास्ते यहाँ से रवाना होने हेतु टिकट आदि का प्रबंध हो गया था, देहली आदि तार भी दिये थे। हमारे यहाँ का मुनीम एक होशियार व्यक्ति है, परंतु पैसे के कार्य में कच्चा है। रवाना होने की पहली रात मालूम हुआ कि पाँच-चार जगह से उगाही की रकम लेकर चुपचाप निजीकार्य में

(अनुसंधान पृष्ठ सं. ७ पर...)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४५: अंक-२४२, वर्ष-२२, फरवरी-२०१८

आषाढ शुक्ल ६, शुक्रवार, दि. २४-६-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, प्रवचन-१७, गाथा-४६

योगीन्द्रदेव मुनि, दिगम्बर मुनि हुए। उन्होंने यह योगसार बनाया। योगसार का अर्थ-आत्मा का स्वभाव शुद्ध और आनन्द है, उसमें एकाग्रता का होने का नाम योग कहा जाता है। उसमें सार अर्थात् निश्चय स्वभाव की स्थिरता (होवे), उसे योगसार कहते हैं। ४५ गाथा हो गयी है।

४६ - 'धर्म रसायन को पीने से अमर होता है।' धर्मरूपी औषध पीने से अमर होता है। इस गाथा में ऐसा कहते हैं।

जइ जर-मरण-करालियउ, तो जिय धम्म करेहि।
धम्म-रसायणु पियहि तुहुँ, जिम अजरामर होहि॥४६॥

'हे जीव! यदि तू जरा और मरण के दुःखों से भयभीत है...' जरा-मरण और दुनिया के संयोग का दुःख-ऐसे दुःखों से यदि तू भयभीत है, चौरासी के अवतार से (भयभीत है)। 'तो धम्म करेहि-धर्म कर।' यह धर्म कर अर्थात् धर्म क्या? यह आता है अन्दर, थोड़ा अर्थ किया है। 'धर्म उसे ही कहते हैं कि जो संसार के दुःखों से निकालकर मोक्ष के परमपद में धारण करे। वह धर्म, रत्नत्रयस्वरूप है।' सूक्ष्म बात है।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। ऐसे आत्मा की अन्तर में सम्यक्श्रद्धा, ज्ञान और रमणता (होवे), उसे यहाँ धर्म कहा गया है। समझ

में आया? 'कर धर्मोषधि पान'-ऐसा है न? 'तू धर्मरसायन का पान कर।' धर्मरूपी औषधि भी रसायन अर्थात् उत्तम औषधि। 'जिससे तू अजर-अमर हो जाएगा।' जिससे तू अजर और अमर हो जाएगा। जरा और मरणरहित हो जाएगा... परन्तु धर्म अर्थात् क्या?

पहले ऐसा कहा है कि मनुष्य को यह जन्म-जरा-मरण के दुःख पहले भासित होना चाहिए। समझ में आया? 'जरा व मरण के भयानक दुःख हैं। जब जरा आ जाती है, शरीर शिथिल हो जाता है, अपने शरीर की सेवा स्वयं करने को असमर्थ हो जाता है, इन्द्रियों की शक्ति घट जाती है, आँख की ज्योति कम हो जाती है।' इत्यादि।

मुमुक्षु :- सब अनुकूल हो तब?

उत्तर :- अनुकूल नहीं, धूल में भी अनुकूल नहीं। अनुकूल कब था? बाहर के इन्द्रिय आदि मेरे, और पद आदि अनुकूल... यहाँ तो कहते हैं कि प्रतिकूल हो या अनुकूल, उस बाह्य सामग्री की रुचि छोड़ दे। समझ में आया यहाँ?

यहाँ तो तुझे चार गति में भटकने का भय लगा होवे तो धर्म-औषधि का पान कर-ऐसा कहते हैं। जैसे, बाहर के रोग को मिटाने को औषध है; वैसे ही जन्म-जरा-मरण के रोग को मिटाने के लिए

आत्मा में ओषध है। आत्मा के पास है। आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप अनाकुल आनन्दस्वरूप है, उसका अन्तर में अनुभव करना। आत्मा के आनन्दस्वरूप का अनुसरण करके अन्तर में उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणतारूप अनुभव करना, यह जन्म-जरा-मरण का नाश करने की औषधि उपाय है। यह एक औषधि है। समझ में आया? लोगों ने दूसरे औषधि ढूँढ़े कि भई! इस रोग पर यह औषधि... परन्तु किसी ने जन्म-मरण की औषधि ढूँढ़ी? है?

मुमुक्षु :- वीतरागदाव ने दिया।

उत्तर :- वीतराग सर्वज्ञदेव भी कहते हैं, वही कहते हैं। समस्त रोगों की दवा (शोधकर) इस रोग पर यह दवा और इस रोग पर यह दवा... परन्तु इस चौरासी लाख के जन्म-मरण, जरा में भटकता है, उसकी दवा किसी ने खोजी? वह तो सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव तीन काल-तीन लोक के ज्ञाता, वीतराग कहते हैं कि उसके लिए धर्म रसायन औषधि है। धर्मरूपी उत्तम रसायन है। वह धर्म किसे कहना? समझ में आया? देखो! नीचे है।

‘रत्नत्रय के भाव से ही नये कर्मों का संवर होता है और पुराने कर्मों की अविपाक निर्जरा होती है।’ वह धर्म रत्नत्रयस्वरूप है। देह की क्रिया, धर्म नहीं है, आत्मा में कोई दया, दान, व्रत का भाव हो, वह भी धर्म नहीं है। समझ में आया? आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द है, उसका अन्तर में अनुभव करना, आत्मा पवित्र अनन्त गुण का धाम आत्मा है, उसमें विकार जितना दिखता है, वह आत्मा नहीं-ऐसे आत्मा में अन्तर्मुख होकर आनन्द की शान्ति

का अनुभव करना, वही एक जन्म, जरा, मरण को मिटाने की औषधि है। कहो, समझ में आया?

‘रत्नत्रय निश्चय से एक आत्मिक शुद्धभाव है...’ रत्नत्रय (है वह) मोक्ष प्राप्त करने के लिए तीन रत्न हैं। यह तीन रत्न अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। यह सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा पूर्णानन्द है, उसमें अन्तर्मुख होकर निर्विकल्प श्रद्धा होने को सम्यग्दर्शन कहते हैं। राग के अवलम्बन बिना चैतन्य ब्रह्म भगवान आत्मा की अन्तर अभेद निर्विकल्प प्रतीति होने को सम्यग्दर्शनरूपी जन्म, जरा,

मरण को मिटाने का औषधि कहते हैं। उस आत्मा का ज्ञान कि यह परमानन्दमूर्ति आत्मा है-ऐसे आत्मा का ज्ञान; आत्मा का ज्ञान दूसरी चीज का नहीं-वह जन्म, जरा, मरण रोग को मिटाने का औषधि एक महा उपाय है और फिर स्वरूप में स्थिर होना। जो आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द, जो श्रद्धा-ज्ञान में लिया हो, उसमें अन्तर में स्थिर होना, रमना, जमना,

आनन्द का विशेष अनुभव करना-इसका नाम चारित्र कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? यह धर्म-औषधि पान शुद्धभाव है।

‘आत्मतल्लीनता है...’ अनादि की पुण्य-पाप के विकारीभाव की तल्लीनता है वह जन्म, मरण के रोग को उत्पन्न करने का कारण है। आत्मा में होनेवाले परलक्ष्यी शुभाशुभभाव-दया, दान, व्रत, भक्ति आदि शुभ(भाव) और हिंसा, झूठ आदि अशुभ(भाव) में लीनता, वह जन्म, जरा, मरण को बढ़ाने का वह रोग है। जन्म, जरा, मरण को मिटाने की औषधि, उस चैतन्य भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति में



लीनता, उसमें एकाग्रता (करना है)। पहले आत्मा को पहचाने, पहचानकर श्रद्धा करे, जाने और फिर उसमें लीनता करे, वह लीनता आत्मिकभाव है।

आत्मलीनता है, वह 'स्वसंवेदन है...' समझ में आया? लो! गुरु से मिले-ऐसा नहीं, यह कहते हैं। स्व-संवेदन हुआ, तब गुरु से मिला ऐसा कहने में आया। स्व-संवेदन-आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा है, अनादि-अनन्त सद्चिदानन्दस्वरूप है; यह देह तो मिट्टी-जड़ है, वाणी जड़ है, कर्म जड़ है, पुण्य-पाप के भाव होते हैं वह विकार, दोष और दुःख है। इनसे रहित आत्मा का स्वभाव, उसका अपना स्वसंवेदन (अर्थात्) ज्ञान, ज्ञान से ज्ञान को जाने, ज्ञान, ज्ञान से आत्मा को जाने; ज्ञान, ज्ञान से आत्मा का वेदन करे; ज्ञान, ज्ञान से आत्मा में स्थिर हो, वह स्वसंवेदन एक ही जन्म, जरा, मरण को मिटाने का उपाय-रसायन है। कहो, समझ में आया? स्वानुभव है... अनुभव है। भगवान आत्मा अनादि का पुण्य और पाप, शुभाशुभराग का अनुभव करता है, वह अनुभव तो पर विकार का (अनुभव है)। वह तो चार गति के भटकने का मूल है। भगवान आत्मा का जो अनुभव, वही मोक्ष का कारण है और रोग-जन्म, जरा, मरण को मिटाने का एक रसायन है। रसायन अर्थात् उत्तम औषधि। कहो समझ में आया? डॉक्टर और वैद्य नहीं देते? उत्तम रसायन या भस्म या... देते हैं न कुछ? पुडिया, हैं? वह ऊँची-क्रीमती होती है। यह भी ऊँची क्रीमती रसायन है, कहते हैं। औषध में भी ऊँची (औषध को) रसायन कहते हैं।

मुमुक्षु :- क्रीमती में मात्रा अधिक रहती होगी।

उत्तर :- मात्रा उसमें अधिक है। समझने के लिए। रोग तो स्वयमेव मिटता है। समझ में आया? यह तो दृष्टान्त है। दृष्टान्त में से कहीं पूरा सिद्धान्त नहीं निकलता, आंशिक निकलता है।

जैसे वह रसायन रोग को मिटाने का कारण है, वैसे भगवान आत्मा सद्चिदानन्द प्रभु का अन्तर

में एकाकार होकर अनुभव, श्रद्धा, ज्ञान और रमणता करना, वह एक ही जन्म-जरा-मरण को मिटाने का रसायन है। वह एक ही औषध है। श्रीमद् में आता है न? श्रीमद् में... आत्मसिद्धि में...

**आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान।
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान॥**

कहो, समझ में आया? आत्मा राग में, पुण्य में, शरीर में, पर में है-यह मान्यता महाभ्रम है।

'पुरुषार्थ...' कल आया था न? समस्त वकील को मूर्ख सिद्ध किया था परन्तु ऐसा लेख लिखा था.. गप्प मारा था। आहाहा..! सब वकील मूर्ख हों-ऐसा नहीं। वकील कर्तारूप हो तो मूर्ख हो, कहो समझ में आया? यह तो ऐसा लिखा है कि मूर्ख के जाम जैसा लिखा है। मनुष्य पुरुषार्थ से बड़े-बड़े बाघ को वश करता है-ऐसे पानी पर बड़े स्टीमर चलावें। जैसे लड़का खेल खेलता है, उसमें पानी में चलाता है, इतना पुरुषार्थ! आत्मा पर का कर नहीं सकता होगा? धूल में भी नहीं करता हो, हाँ! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि भाई! तेरा पुरुषार्थ या तो विकार में चलता है और या पुरुषार्थ स्वभाव में चलता है; पर में तेरा पुरुषार्थ जरा भी काम नहीं करता। आहाहा..! धूल में भी नहीं करता। एक आँख की पलक झपक सकता है? ऐसा हो जाता है, धूल में भी कुछ नहीं लेता। सब बहुत लिया है, इसमें... बिजली, आकाश में से पकड़कर पानी में उतारी, ऐसा किया.. बिजली कहीं आकाश में से पकड़ी होगी? यह बिजली... बिजली.. होती है न?

वह अलग, वह उतारी हुई नहीं। यह तो पंखा चलाया, पानी को बाहर निकालने को यह बिजली... ऐसा कहते हैं, यह तो पता है, इसकी कहाँ बात है, धूल भी कुछ नहीं करता। आत्मा करे क्या? अपनी सत्ता में विकार करे और या आत्मा का अनुभव करके मुक्ति करे। बाकी पर का अणुमात्र भी नहीं

बदल सकता है। आहाहा..! बड़ा मानधाता... वह नहीं था एक बड़ा? रामो... रामो... कहता था न? 'गामा'! ऐसा उसका बड़ा शरीर लट्टू जैसा, पूरे हिन्दुस्तान में क्या पूरे देश में बड़ा योद्धा कहलाता था, वह मरते समय ऐ... ऐ... (हो गया)। मक्खी बैठे तो हाथ (उठा नहीं सकता), यह तो जड़ है। जड़ में आत्मा क्या कर सकता है? आत्मा या दीनता करे और या उग्रता पुरुषार्थ करे, उलटा या सुलटा। समझ में आया?

मुमुक्षु :- परन्तु शरीर अच्छा होवे तो...

उत्तर :- धूल में अच्छा शरीर, कहना किसे शरीर? यह तो मिट्टी है। शरीर तो मिट्टी है। यह निरोगता होवे तो उसकी दशा, रोग होवे तो उसकी दशा... आत्मा को उसके कारण कुछ रुकता है, इस बात में जरा भी दम नहीं है। शरीर में रोग हो, वह जड़ में है, उसमें आत्मा को क्या आया? समझ में आया?

यहाँ तो 'आत्मभ्रान्तिसम रोग नहीं...' आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द है-ऐसा न मानकर उसे रागवाला और शरीरवाला और परवाला मानना-ऐसा एक महारोग मिथ्यात्व का इसे लगा है। आहाहा..! 'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान' इसे क्या रोग है? यह बतलानेवाले ज्ञानी हैं परन्तु सुजान, हाँ! भलीभाँति जाननेवाले, सम्यक्ज्ञानी की बात है; और उनकी आज्ञा है कि इस प्रकार नहीं मानना-कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को नहीं मानना यह पथ्य है। 'औषध विचार ध्यान' और उसका औषध विचार और ध्यान है। कहो! विचार और ध्यान उसके औषध हैं। कहो, समझ में आया?

देखो! 'जहाँ अपने आत्मा के ही शुद्ध स्वभाव का श्रद्धान है, ज्ञान है, और उसमें ही स्थिरता है, उसे ही आत्मदर्शन कहते हैं।' उसे आत्मदर्शन कहते हैं। भगवान आत्मा परसन्मुख की उपयोग दशा को बदलकर और अपने स्वभाव के अन्तर में उपयोगदशा को जोड़े... योगसार है न?

उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र कहते हैं। 'वही एक धर्म रसायन है।' लो! कितना गुजराती सीखकर आये? समझ में आया? जवाब दिया... कहो समझ में आया? एक धर्म रसायन जो 'अमृतरस का पान है। जिसका पान करने से स्वाधीनरूप से परमानन्द का लाभ होता है।' आहाहा..! ह्व परन्तु इसे सूझ नहीं पड़ती। यह भगवान स्वयं समीप है। समझ में आया?

औह 'शुद्धोपयोग ही धर्म है।' नीचे शब्द है, क्या कहा? आत्मा में हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग वासना, काम, क्रोध, ये पापपरिणाम वह अशुभभाव है; दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप आदि शुभभाव हैं, पुण्यभाव है, वह धर्म नहीं है; धर्म तो आत्मा में इन शुभ और अशुभभाव से हटकर अन्तर आत्मा के आनन्द में शुद्धभाव प्रगट करना, पुण्य-पाप के भावरहित-ऐसे शुद्धभाव को भगवान, धर्म कहते हैं। आहाहा..! समझ में आया?

'कषाय के उदयसहित शुभोपयोग धर्म नहीं है।' देखो! इसमें तो बराबर ठीक लगता है। निमित्त का आवे तब जरा दृष्टिकोण बदल जाता है। कषाय का उदय, शुभभाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का विकल्प उठता है, वह तो राग है, वह धर्म नहीं है। आहाहा..! वह तो शुभ उपयोग है, पुण्य-बन्ध का कारण है। शुद्ध उपयोग-रागरहित आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, आत्मा का शुद्ध व्यापार, उसे यहाँ शुद्धयोग कहा जाता है, उसे यहाँ धर्म कहा जाता है। समझ में आया? फिर (लिया है कि) अशुभ से बचने को शुभ करना पड़ता है। 'परन्तु उसे बन्ध का कारण मानना चाहिए। मोक्ष का उपाय एकमात्र स्वानुभवरूप शुद्धोपयोग है।' उसके बिना कोई मोक्ष का उपाय एक भी नहीं है। कहो, समझ में आया?

'बृहद् सामायिक' का दृष्टान्त दिया है। 'अब तू शुद्ध आत्मज्ञान प्राप्त करके उन विषय-कषायों का पूर्णरूप से नाश कर डाल, विद्वान लोग

अवसर मिलने पर शत्रुओं को मारे बिना छोड़ते नहीं हैं।' हे आत्मा! तुझे अभी अवसर मनुष्य देह में अवसर मिला है। आत्मा का भान करने का अवसर आया है। यह विकाररूपी शत्रु को नाश करने का तेरा काल है। आहाहा..! अरे! चौरासी के अवतार

में तुझे भटकते हुए मनुष्यपना (मिला), उसमें इन विकाररूपी शत्रुओं को नाश करने का तेरा अवसर है और विद्वान अवसर को पहचान कर शत्रु को मार डालते हैं। अभी अपना अवसर है। समझ में आया? फिर धर्म रसायन की बात की है। ठीक!

पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा साधर्मियों को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र

उसने खर्च कर दी है। स्थिति को काबू में करने का विकल्प हो गया। रुकना हो गया। दूसरा बंदोबस्त जल्द नहीं बैठ सका व मेरी अनुपस्थिति में सब रकम साफ़ न हो जाये, ऐसा विकल्प उठ खड़ा हुआ। गृहस्थभूमिका है, शिथिल योग्यता की विजय हो गई, रुकना हो गया; बस इतनी ही बात है, अतः लिखना ठीक नहीं समझा था; और भी सहकारी कारणों ने रुकने में ही सहायता दे दी।

विहार के व राजकोट के कोई विशेष महाराजश्री के उद्गार लिखना। व कोई महत्त्वपूर्ण घटना होवे तो लिखना... आप सब को सहजानंद की प्राप्ति होवे यह ही इच्छा है।

धर्मस्नेही निहालचंद्र

आपने लिखा कि शांति से पत्र लिखने की फुर्सत नहीं है क्या? अभी शांति है यह बताने हेतु समाप्त किये बाद भी लिखने का विकल्प हुआ है।

“पर्याय एक ओर से प्रवेश करती हुई दिखती है; दूसरी ओर से रमती हुई दिखती है; तीसरी ओर से उघड़ती हुई दिखती है। वस्तु विचित्र है।

दीपक की लौ बुझने के पहले समय अधिक प्रकाशित होती है। सहजानंद से च्युत होनेवाला पुरुषार्थ निर्बल होने के पहले समय अधिक उग्र होता है। द्रव्य तो सहज पुरुषार्थ का पिण्ड है, उसकी दृष्टि में सहज ही च्युति नहीं होती।”

“जीवन के परिणामन की अति विचित्रता देखो रे ज्ञानी!”

आगामी प्रकाशन

पण्डित श्री दिपचंदजी कासलीवाल द्वारा लिखीत आध्यात्मिक ग्रन्थ 'आत्मावलोकन' एवं 'चिद्विलास' पर पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा हुए भाववाहि अर्थगंभीर प्रवचनोंकी पुस्तकें सन् २०१८में प्रकाशित करनेकी भावना है। इसमें 'आत्मावलोकन' ग्रन्थ पर हुए प्रवचनोंके पाँच भाग होनेकी धारणा है एवं 'चिद्विलास' ग्रन्थ पर हुए प्रवचनोंके दो भाग बननेकी संभावना है।



पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार
ग्रंथके ९४१ वचनामृत पर भाववाही
प्रवचन, दि. ८-६-१९८५, प्रवचन
क्रमांक-५५७ (विषय : विधि)

केवलज्ञानकी पर्यायको भी न देख। पूर्वमें अवस्था शुद्ध न थी, व बादमें शुद्ध हुयी-ऐसे भेदको न देख। गुप्त व प्रकट-अवस्थारूपी भेद यानी कि द्रव्य व पर्यायके भेदको न देख! एक समयमें विकार होने पर भी शक्ति तो ऐसी की ऐसी ही है; और अवस्था प्रकट हुयी तब भी शक्ति ज्योंकी त्यों है-ऐसी श्रद्धा सुखका मूल है। ९४१.

९४१. बीचमें अनुभव प्रकाशका एक बोल है। बादमें पुनः सातवें अधिकारके बोल शुरू होते हैं। ९४२से। बीचमें यह एक बोल अनुभव प्रकाशका है। **‘केवलज्ञानकी पर्यायको भी न देख!’** दृष्टि कहाँ करनी यह कहते हैं। दृष्टिका विषय केवलज्ञानकी पर्याय भी नहीं है। जीवको जिसकी दृष्टि है, जीवको ज्ञानमें उसीकी मुख्यता है। ज्ञानमें जिसकी मुख्यता है उसे जीव देखता है और जिसकी मुख्यता नहीं है वह दिखने पर भी ज्ञानमें ज्ञात होने पर भी इतना गौण हो जाता है कि नहीं जाननेके बराबर रहता है, जाना नहीं जाना कर देता है। ज्ञानकी गौणता क्या करती है? कि जाना नहीं जाना कर देती है, सुना अनसुना कर देती है।

यहाँ ऐसा कहते हैं कि **‘केवलज्ञानकी पर्यायको भी न देख।’** अभी तो उत्पन्न नहीं है, परन्तु भविष्यमें जो उत्पन्न होगी, जिसकी भावना तुझे वर्तती है, पूर्ण पर्याय है न? उसकी भावना उत्पन्न होती है। तो भी कहते हैं कि वह दृष्टि देने लायक पद नहीं है। वह पर्यायका पद है, वह दृष्टि देने लायक नहीं है। वह भी पर्याय अपेक्षा-से परमपद होने पर भी पारिणामिकभावकी अपेक्षा-से अपरमपद है। परमपद नहीं है वह। क्योंकि उससे अनन्तगुण है। शुद्धात्म पद है वह उससे अनन्तगुण

है। एक गुण नहीं अपितु अनन्तगुण है। अतः दृष्टि वहाँ देने लायक है।

‘केवलज्ञानकी पर्यायको भी न देख।’ पुनः कहते हैं कि ऐसा भी न देख कि **‘पूर्वमें अवस्था शुद्ध न थी, व बादमें शुद्ध हुयी-ऐसे भेदको न देख।’** वह नीचेकी दृष्टिका विषय होता है। पहले तो हम व्यापार-व्यवसायमें बहुत बड़े पैमाने पर करते थे, बहुत पाप करते थे, अब वह सब छोड़ दिया है। ऐसे तो न देख, परन्तु पहले अवस्था ऐसी शुद्ध थी और अब शुद्ध हुयी ऐसा भी न देख, ऐसा कहते हैं। अवस्थादृष्टिका यहाँ निषेध है, पर्यायदृष्टिका निषेध है।

‘गुप्त व प्रकट-अवस्थारूपी भेद यानी कि द्रव्य व पर्यायके भेदको न देख!’ द्रव्य-पर्यायका ज्ञान तो आप शास्त्र द्वारा करवाते हो, वाणी द्वारा द्रव्य-पर्यायका ज्ञान करवाते हो, अब कहते हो कि द्रव्य-पर्यायको न देख। हाँ, पहचान करनेके लिये भले ही तुझे वह सब कहा हो, तू पहचानता नहीं था इसलिये द्रव्य-गुण-पर्यायके भेद कर-करके तुझे वस्तुकी पहचान करवायी, तुझे वस्तुकी कीमत करवायी। परन्तु अब अनुभव करवाना है। अनुभव करवाने हेतु तुझे ऐसा कहते हैं कि जो तुझे समझमें आया है, वह भेदपूर्वक समझमें आया

है। उस भेदमें अब खड़े रहनेकी अब मनाही करते हैं। उस भेदमें भी खड़ा नहीं रहना है।

परिणाम अनुभवमें किस तरह कार्य करते हैं उसका यहाँ संकेत है। क्योंकि वह विषय कथनमें वर्णनमें लाना वह सर्वथा वक्तव्य नहीं है। मात्र कथंचित् वक्तव्य है, जिसका यहाँ संकेत किया जाता है कि अनुभव करनेवाला जीव द्रव्य-पर्यायके भेदको देखता नहीं। जबतक द्रव्यके भेदको अथवा पर्यायके भेदको लक्ष्यमें रखता है, तबतक भेदके लक्ष्यमें खड़ा रहनेवाला अनुभवको प्राप्त नहीं कर सकता। भेदके अनुभवमें रहता है। अभेद वस्तुका उसे अनुभव नहीं होता।

मुमुक्षु :- ..

पूज्य भाईश्री :- भेड करता है न? इसमें इतना घी इस्तमाल किया था। चार गुना घी इस मीठाईमें डाला था। ऐसा वह यदि विचार करनेको रुके तो उसे उसका अनुभवमें करनेमें खलल पहुँचती है। उसका आनन्द वह भोग नहीं सकता। हीरेका हार खरीदते वक्त जितने विकल्प किये हो, उतने विकल्प यदि पहनते वक्त करे तो पहननेका आनन्द उसे नहीं आता। ऐसे मीठाई बनाते वक्त या खरीदते वक्त जितने विकल्प किये हो, उतने खाते वक्त करे तो उसके खानेका आनन्द नहीं रहता। ये तो इन दृष्टान्तोंमें समझमें आता है।

उसी प्रकार पहचानते वक्त सत्शास्त्रसे चाहे जितने प्रकार-से बातें आयी हैं, तो भी अनुभवमें उन भेदोंको नहीं देखने हैं। शुद्धता-अशुद्धता, शुभ-अशुभको एक ओर रखो, परन्तु शुद्धता-अशुद्धताके भेद और द्रव्य-गुण-पर्यायके भेद विलय हो जाय, उसके बाद अनुभव होनेकी बारी है, अभेद अनुभव। क्योंकि अनुभव निर्विकल्प है और इन भेदका आश्रय विकल्पका उत्पादक है। दोनोंका मेल नहीं है, ऊलटा-सुलटा है।

इसलिये ऐसा कहते हैं कि शुद्ध और अशुद्ध अवस्था भेद है उसे भी न देख। बनारसीदासने गाया है। 'समल विमल न विचारीये, यही सिद्धि नहीं ओर'। समलता यानी अशुद्धता और विमलता यानी शुद्धता। 'एक जानिये एक

देखिये रमी रहीए इक ठौर'। एक अर्थात् अभेद तत्त्वको जानता हूँ। अभेद तत्त्वको ही देखता हूँ, एकको ही देखता हूँ, जिसमें दोका भेद नहीं है। और उसीमें स्थिर रहता हूँ। रमता हूँ, उसीमें 'एक जानिये एक देखिये रमी रहिये इक ठौर, समल विमल न विचारीए, यही सिद्धि नहीं ओर।' जहाँ समलता-विमलताका भी विचार नहीं है, वही सिद्धि है, अन्य कोई सिद्धि नहीं है। ऐसा कहा है, नाटक समयसारमें।

नियमसारमें एसा एक कलश लिया है। शुद्धता और अशुद्धताकी विकल्पना, शुद्ध और अशुद्धकी विकल्पना हमेशा मिथ्यादृष्टिओंको होती है। ऐसा कहकर बात ली है। नियमसारमें ७२वाँ कलश है। ४९ गाथाका प्रारंभ करने-से पहले। शुद्धभाव अधिकारमें है। ७२ नंबरका कलश है। 'शुद्ध-अशुद्धकी जो विकल्पना वह मिथ्यादृष्टिको सदैव होती है; सम्यग्दृष्टिको तो सदा (ऐसी मान्यता होत है कि) कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध है।' द्रव्य-से और पर्याय-से दोनोंकी शुद्धता उसे है। क्योंकि अशुद्ध अंशको वह अपने स्वस्वामीत्व रूपसे स्वीकारता नहीं। इसलिये स्वयंको द्रव्य-गुण-पर्याय-से शुद्ध देखता है। यहाँ तो कारणपर्याय लेते हैं न, मुख्यरूप-से कारणपर्याय लेते हैं। द्रव्यको यहाँ पूरा किया है। द्रव्य, गुण और उसकी कारणपर्यायमें द्रव्य पूरा हो गया।

'कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं। इसप्रकार...' यहाँ लिया है, 'इसप्रकार परमागमके अतुल अर्थको...' इस परमागमकी तुलना न हो सके ऐसा भाव है-आशय है। ऐसे 'अतुल अर्थको सारासारके विचारवाली सुंदर बुद्धि द्वारा...' कहाँ हित है और कहाँ अहित है, ऐसा विचार करनेवाली सुंदर बुद्धि द्वारा 'जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है,...' ऐसा जो सम्यग्दृष्टि जानता है, 'उसे हम वंदन करते हैं।' मुनिराज ऐसा कहते हैं। उसे हम वंदन करते हैं। मूल श्लोकमें यह बात है। 'वन्दामहे'। एकवचनका। 'वन्दामहे तं वयम्' हम वंदन करते हैं। ऐसा शब्दप्रयोग किया है, यह बात कहते

हुए।

शुद्ध एवं अशुद्धके भेदको उड़ानेवाला जो सम्यग्दृष्टि परमागमके अतुल्य अर्थको अपनी सुंदर बुद्धि द्वारा सारासारका विचार करके जहाँ अन्दर अनुभवमें जाता है तो मुनिराज कहते हैं कि उसे हम वंदन करते हैं। कितने सैंकड़ों साल पहले यह श्लोक लिखा गया है। **‘शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृष्टिप्रत्यहं’**। मिथ्यादृष्टिको शुद्ध-अशुद्धकी विकल्पना है। सम्यग्दृष्टि **‘शुद्धं कारणकार्यतत्त्वयुगलं सम्यग्दृशि प्रत्यहम्’**। सम्यग्दृष्टिको तो कारण कार्य दोनों शुद्ध ही हैं। **‘इत्थं यः परमागमार्थमतुलं जानाति सदहृक् स्वयं सारासारविचारचारुधिषणा’**। सारासारका विचार करनेवाली **‘चारुधिषणा’** चारु अर्थात् सुन्दर और धि माने बुद्धि। **‘धिषणा’** यानी ऐसी बुद्धिको। ऐसे बुद्धिधारकको। **‘वन्दामहे तं वयम्’**। उसे हम वंदन करते हैं। यह श्लोक लिखते हुए मुनिराजको इतना भाव आया है।

ऐसे सुदृष्टिको, सम्यग्दृष्टिको, **‘सम्यग्दृशि प्रत्यहम्’**। उसे हम वंदन करते हैं। वहाँ तक लिखते हैं। वास्तवमें यह व्यक्तिका विषय नहीं है। वे धर्मको वंदन करते हैं। धर्मको वंदन करते होने-से वे धर्मीको वंदन करते हैं। धर्मीको जो वंदन करते हैं, वे धर्मको वंदन करते हैं और धर्मको वंदन करते हैं वे धर्मीको वंदन करते हैं। यहाँ सीधा सम्बन्ध धर्मके साथ है। इसलिये जो धर्मको वंदन नहीं करता है, वह धर्मीको वंदन नहीं करता है। जो धर्मीको वंदन नहीं करता है वह धर्मको वंदन नहीं करता है। ऐसा आमने-सामने निकलता है।

मुमुक्षु :- मुनिराज स्वयं तो सारासार बुद्धिमें प्रवर्तते ही हैं।

पूज्य भाईश्री :- स्वयं तो प्रवर्तते हैं, अच्छी तरह प्रवर्तते हैं। तो भी उनको इतना बहुमान आया है। वह धर्म प्रति बहुमान है।

मुमुक्षु :- अपने-से नीची भूमिकाको क्यों वंदन करते हैं?

पूज्य भाईश्री :- यहाँ वे व्यवहार वंदन करने कहाँ

जाते हैं? वंदन-नमस्कार करने जाते हैं, ऐसा नहीं है। परन्तु वे अपने भावमें भाववंदन करते हैं, वे धर्मको वंदन करते हैं। क्योंकि धर्म है वह वंदनीय है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- उसे धर्म है।

भगवानके ज्ञानमें ऐसा आता है कि जो जीव सम्यक् प्रकार-से कषाय पर विजय प्राप्त करता है, वह जिन हुआ। उसे कब प्रथम जिन गिना? कि पाँचवीं करणलब्धि हुयी तब। जो करणलब्धि सम्यग्दर्शन पहलेकी पूर्वपर्याय है कि जो पर्याय पूर्ण होने पर अनुत्तर पर्यायमें सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है। बीचमें एक समयकी भी अन्य पर्याय नहीं है। ऐसे जो करणलब्धिके परिणाम, धवलमें आता है, करणानुयोगका ग्रन्थ है न, इसलिये परिणामके सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषय वीरसेनस्वामीने लिये हैं। वहाँ उसे जिन कहा कि यह जिन हुआ है। जिन तो तेरहवें गुणस्थानमें होते हैं। तो कहते हैं, नहीं, भगवान जिनेन्द्र ऐसा कहते हैं कि यह जीव जिन हुआ। ऐसी बात ली है। एक ही शब्दके कितने अर्थ करना। जहाँ जो कहना चाहते हैं, वहाँ उस बातको समझनी चाहिये।

मुमुक्षु :- ..

पूज्य भाईश्री :- उसमें प्रश्न क्या है?

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- वह तो धर्मको ही देखता है। शुद्ध-अशुद्धके भेदको नहीं देखनेकी तो यहाँ बात चल रही है। शुद्ध-अशुद्धके भेदको नहीं देखनेकी तो बात चल रही है। और इस तरह हम सम्यग्दृष्टिको देखते नहीं, क्योंकि हम भी सम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा कहते हैं। और जो सम्यग्दृष्टि है वे भी नहीं देखते।

... इसलिये बहुमान आया है। अरे..! शुभाशुभमें तो पूरा जगत अटका है। ये तो शुद्धता-अशुद्धताको देखता नहीं। जिसकी नज़र निज परिपूर्ण परमात्मतत्त्व पर है, वह तो कारणतत्त्व और कार्यतत्त्वको शुद्ध देख लिया है। उसे तो दोनों शुद्ध ही है। वह तो कहनेके लिये कहा है, उसे कहाँ शुद्ध-अशुद्ध देखना है? ऐसा जो सम्यक् प्रकार-

से स्वद्रव्यका अवलोकन करता है, उसे हम वंदन करते हैं, ऐसा कहते हैं। बहुमान करते हैं।

यह ४८वीं गाथा पूर्ण करते हुए यह श्लोक बनाया है। और ४८वीं गाथाका विषय ऐसा है कि 'जिसप्रकार लोकाग्रमें सिद्धपरमेष्ठी...' विराजमान हैं, अशरीरी 'पाँच शरीरके प्रपंचके अभावके कारण 'अशरीरी' हैं।' प्रपंच अर्थात् विस्तार। और जो अविनाशी हैं। अब उन्हें सिद्धपर्यायमें-से कोई पर्याय बदलनी नहीं है। और जो अतीन्द्रिय हैं। जिन्हें कोई इन्द्रियज्ञानका उपयोग नहीं है। और सकल विभावके अभावके कारण जो निर्मल हुए हैं। भावकर्मके अभावके कारण, द्रव्यकर्म, भावकर्मके कारण जो विशुद्धात्मा हुए हैं। ये सब सिद्ध भगवानके विशेषण हैं। ऐसे जो सिद्ध परमेष्ठी हैं, वैसे ही संसारी जीव हैं। जैसे सिद्ध परमेष्ठी हैं, वैसे ही संसारी जीव हैं, ऐसे लेना है। यह गाथाका विषय है। उसीप्रकार संसारमें भी ये संसारी जीव कोई नयके बल-से वैसे ही हैं। तो कहते हैं, इस नय-से ऐसे हैं और उस नय-से ऐसे हैं। शुद्धनय-से शुद्ध हैं और अशुद्धनय-से अशुद्ध हैं। उस बातको उड़ानेको लिये फिर कलशकी रचना की है। उसमें दृष्टिका ज़ोर बहुत है। ज्ञानमें भेद किया न? कोई नयके बलसे ऐसे हैं। स्वयंने टीका की है। गद्यमें टीका की है, बादमें इस पदकी रचना की है। परन्तु गाथामें तो नय शब्द नहीं है। गाथामें तो...

विन देह अविनाशी, अतीन्द्रिय, शुद्ध निर्मल सिद्ध ज्यों। लोकाग्रमें जैसे विराजे, जीव है भवलीन त्यों।।४८।।

'तह जीवा संसिदी पेया'। ऐसे तू संसारी जीवोंको जान। ... सिद्ध है, ये संसारी है, कैसे जानना? तो टीकामें स्वयंने स्पष्ट किया कि कोई नयके बल-से तू जान-शुद्धनयके बल-से तू ऐसा जान। अब, वह शुद्धनय और अशुद्धनयका भेद उड़ाना है इसलिये कहते हैं कि वह शुद्ध-अशुद्धकी विकल्पना मिथ्यादृष्टि हमेशा करते रहते हैं। सम्यग्दृष्टिको सारासार विचार करनेवाली सुंदर बुद्धि द्वारा ऐसी कल्पना नहीं होती। अतः वह तो ऐसा सम्यग्दृष्टि है कि जो आत्माको सिद्धस्वरूप ही जानते हैं। हम तो

सब आत्माको सिद्ध समान ही देखते हैं। यह मुद्दा है। ऐसी सम्यग्दृष्टिकी सुंदर बुद्धिको हम वंदन करते हैं। ऐसे लेना है। यह अनुभव प्रकाशका अत्यंत गूढ़ वचन है।

'गुप्त व प्रकट-अवस्थारूपी भेद यानी कि द्रव्य व पर्यायके भेदको न देख।' द्रव्य-पर्यायके भेदको देखने-से तुझे अभेद अनुभव नहीं होगा। अभेद अनुभव नहीं रहेगा। हमारे कथनका तात्पर्य अभेद अनुभव करवानेका है। भेद कहकर सुननेवालेको भेदमें खड़ा रखनेके लिये भेद नहीं कहते हैं। वह आ गया है। सातवीं-आठवीं गाथामें। भेद-से कहते हो न। भेद-से कहते हैं, वह अभेदको समझनाके लिये। भेद-से कहते हैं वह अभेदका अनुभव करनेके लिये। जिसके ज्ञानमें और जिसकी दृष्टिमें भेद विलीन होते हैं, समझे हुए भेद भी जब विलीन होते हैं तब उसे अनुभव होता है। जबतक उसका भेद पर लक्ष्य रहता है, तबतक अनुभव नहीं होता। इसलिये अनुभव करने हेतु ऐसा कहते हैं कि ऐसा न देख।

'गुप्त व प्रकट-अवस्थारूपी भेद...' देखो! अब इसमें क्या कहना है? कि जो आत्मत्व है, आत्माका जो आत्मत्व है, जो उसका स्वभाव है, वह स्वभाव सामर्थ्य अपेक्षा-से वह अव्यक्त और गुप्त है और पर्याय अपेक्षा-से वह व्यक्त प्रगट है, ऐसा तू न देख, परन्तु एकाकार मात्र स्वभावको देख। ऐसा कहना है। रीतका विषय लेते हैं। तू किस रीत-से देख तो तुझे अनुभव हो? स्वभावको तू देख तो स्वभावको कैसे देख तो तुझे अनुभव होगा? यह बात की है। इस विषयकी सूक्ष्मता है। स्वभाव द्रव्यमें है और स्वभाव पर्यायमें है या नहीं? यह स्वभावको देखनेकी रीत नहीं है।

स्वभावको देखनेके लिये तू उसका द्रव्यत्व या पर्यायत्व, इन दोनोंमें-से एक भी भेदको लक्ष्यमें न ले, दोनों प्रकारके भेद तेरे लक्ष्यमें-से निकल जाय और एकाकार स्वभाव ही तेरे लक्ष्यमें रहे, तब तुझे स्वभावका स्व-स्वरूप-से अभेदरूप-से अनुभव रहेगा।

मुमुक्षु :- उसका सामर्थ्य..

पूज्य भाईश्री :- सामर्थ्यको भी द्रव्यत्व अथवा

पर्यायत्वपने ऐसे नहीं। जो भेद पड़ता है वह भेद रागी जीवको विकल्पका उत्पादक होता है। पर्यायका भेद, गुणका भेद या द्रव्यका भेद। द्रव्य-गुण-पर्यायका भेद द्रव्यानुयोगका विषय होने पर भी वह आगमके विषय-से पार अध्यात्मके विषयमें ले जाता है। उससे पार ले जानेकी बात है। द्रव्य-गुण-पर्यायके भेदको भी तू न देख। तेरे स्वरूपको देखने पर द्रव्य-गुण-पर्यायके भेदको भी तू इतनी हद तक गौण कर दे कि तुझे मात्र तेरा एकाकार स्वभाव ही अनुभवमें रहे। उसमें यह द्रव्य, यह गुण, यह पर्याय ऐसे न देख। अनुभव प्रकाश है न? यह ग्रन्थ ही ऐसा है। छोटा ग्रन्थ है, परन्तु गज़बकी बातें की हैं!

‘एक समयमें विकार होने पर भी शक्ति तो ऐसी की ऐसी ही है;...’ पर्यायमें पर्याय समय-समयकी होने-से विकार एक समयका है। कोई भी जीवको दो समयका विकार एकसाथ नहीं होता। क्योंकि प्रत्येक जीवकी पर्याय एक-एक समयकी है। कहते हैं कि जो स्वभाव है वह इतना महान है, उतना गहरा और विशाल है कि जिसे जगतके कोई पदार्थकी उपमा देनी कम पड़ती है। आकाशकी उपमा कम पड़ती है। आकाश तो अनन्त है, फिर भी आकाशके प्रदेश-से आत्माके गुण अनन्तगुण है। इसलिये जगतके समस्त पदार्थ-से वह अनुपम है। ऐसा पदार्थ, ऐसे महान पदार्थके आगे एक समयके विकारका स्थान कितना? कि दृष्टिमें न रहे उतना।

जैसे कोई ऐसा कहे कि कहाँ तीन लोकका राज जिसके पास हो और कहाँ एक भिखारी। तीन लोकका राज तो किसीको नहीं होता। क्योंकि देवलोकमें देव इन्द्र है और मनुष्यलोकमें चक्रवर्ती इन्द्र है। नीचे दूसरे इन्द्र हैं। फिर भी तीन लोकका कोई राजा हो, जिसके पास तीन लोकका राज हो, जिसके आगे एक रोटीका टुकड़ा भी जिसके पास न हो, उसका क्या हिसाब? वैसे जो चैतन्य चक्रवर्ती है, तीन लोकका नाथ ही है वह। उसके आगे एक समयके विकारका क्या? उसका वज़न कितना? उसका कुछ नहीं। वह दृष्टिमें न रहे ऐसी चीज है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- इसलिये तो उसका अफसोस है कि अरेरे...! ये क्या है? चक्रवर्तीके आगे भिखारी दब जाय तो-तो ठीक है, बराबर है। लेकिन ये तो भिखारीके आगे चक्रवर्ती दब गया, उसका क्या? उसका तो अफसोस होना चाहिये न कि ऐसा कैसा ऊलटा? कितना विपरीत। ऐसी स्थिति है।

वह स्वयं एक समयके विकारमें अहंपना करके इतना भाव-से एकाकार होता है। क्योंकि श्रद्धा एक ऐसा प्रकार है कि पूराका पूरा स्वयं वहाँ-से इसमें आ जाता है। एक समयके विकारमें स्वयं पूराका पूरा ऐसा अपनापन करके पकड़ा जाता है कि तीन लोकके नाथको वह उड़ाता है। श्रद्धामें परिणमनेका ऐसा गुण है। गुण अर्थात् ऐसा उसका श्रद्धाका प्रकृति स्वभाव है कि वह जिसकी श्रद्धा करे वह उसका सर्वस्व है। फिर उसके सामने कोई भी हो, उसे उड़ाये। अपना स्वद्रव्य इतना महान होने पर भी उसे उड़ाती है। सामने तीन लोकके नाथ तीर्थकर हो तो उनको भी उड़ाये, उनके कथनको उड़ाये, उनके उपदेशको उड़ाये। पूरे जगतको उड़ाये। ये श्रद्धाकी ताकत है।

इस ताकतका जहाँ स्वद्रव्यमें स्वाभाविकरूपसे उपयोग हुआ तब वह पूरे जगतको उड़ाती है। उस जगतमें रहे सर्व पदार्थको वह उड़ाती है। फिर वह, अनन्त सिद्धोंके सामने भी वह पर्याय नहीं देखती और अपनी शुद्ध पर्यायके सामने भी वह श्रद्धा देखती नहीं। वह सबको एक ओर रख देती है। उसका विषय मात्र त्रिकाली सामान्य द्रव्य रह जाता है। श्रद्धा न तो अपनी श्रद्धारूप सम्यग्दर्शनकी पर्यायको श्रद्धती है, ना ही सिद्ध हो तब अपनी सिद्धपर्यायको श्रद्धती है। फिर दूसरे सिद्धका विषय तो दूर है। उसका विषय अकेला अपना शुद्धात्मा त्रिकाली आत्मा है। और उसकी ताकत जबरदस्त है। ऐसी जो श्रद्धाकी शक्ति है उस शक्तिके आगे सब एक ओर रह जाय तो भी श्रद्धाका पलड़ा नमता है।

सोगानीजीने एक जगह इस विषयमें बहुत अच्छा

लिखा है कि एक पल्लेमें तीन काल तीन लोक। तीन लोकमें तीन लोकमें होनेवाले सिद्ध आ गये या नहीं? तीनों कालके और तीन लोकमें, पंच परमेष्ठी तीन काल तीन लोकके आ गये या नहीं? और एक पल्लेमें मैं। मेरा पल्ला बैठ जाता है और सामनेवाला पल्ला उलड जाता है। उस पल्लुको फेंक देता है। ऊँचा कर देता हूँ, ऐसा नहीं, उसे तो फेंक देता हूँ। ऐसा मैं मेरी श्रद्धामें वज्रनदार हूँ। श्रद्धाका विषय उन्होंने विशेष स्पष्ट किया है।

कहते हैं कि **‘एक समयमें विकार होने पर भी...’** एक ही समयका विकार होने पर भी **‘शक्ति तो ऐसी की ऐसी ही है;’** जो श्रद्धाका विषय शक्ति और सामर्थ्य है वह सदा ऐसीकी ऐसी है। समय-समय होकर वह विकार अनादि काल-से वर्तमान समयरूप अनन्त काल अनन्त समय रहा। बीचमें अनन्त काल निगोदमें प्रचुर कषायकलंकमें रहा। वह भी समय-समयकी पर्याय, हाँ! निगोदकी जो पर्याय है वह भी समय-समयकी है। प्रचुर कषायकलंक है। तो भी वह समय-समयकी पर्याय है। तो भी शक्ति ऐसी की ऐसी ही है, ऐसा कहना है। वज्रन वहाँ ले जाना है। तो भी आत्माकी जो शक्ति, जो श्रद्धाका विषय है वह तो ऐसी की ऐसी ही है। निर्लेप ठोस है।

जब जीव ऐसी शक्तिको देखता है तब उसे उसकी वास्तविक महिमा आती है कि अरे..! अनन्त काल गया, अनन्त भवमें रखड़ा परन्तु मूलमें देखता हूँ तो मैं वैसाका वैसा रहा हूँ। कोई फ़र्क नहीं है। मेरा स्वद्रव्य-द्रव्य स्वभाव (उसमें) कोई फ़र्क नहीं है। अब उस द्रव्य स्वभावको देखने पर मुझे गुप्त-व्यक्त, प्रगट और गुप्त अवस्था भेदको भी मुझे देखना नहीं है। ऐसा है।

मिथ्यादृष्टि तर्क करता है कि उसे निज परिपूर्ण स्वभावको देखकर स्वयंको परिपूर्ण माना तो अब भी उसे अवस्थामें राग क्यों होता है? उसे क्यों इच्छा होती है? उसे क्यों विकार हुआ? अरे..! भाई! वह तो अब अवस्था भेदको देखना भूला है। अशुद्धताको तो देखता नहीं है, परन्तु शुद्धताको भी नहीं देखता है। एकाकार

द्रव्य स्वभावको देखता है। ऐसा विषय है।

इसलिये ऐसा कहा कि **‘एक समयमें विकार होने पर भी शक्ति तो ऐसी की ऐसी ही है; और अवस्था प्रगट हुयी तब भी शक्ति ज्योंकी त्यों है...’** उस अवस्थामें शुद्धता स्वभाव प्रगट हुआ ऐसा कहो, तब भी शक्ति ज्योंकी त्यों है। निगोदमें गया तब भी ज्योंकी त्यों शक्ति है और सिद्धालयमें पहुँचा तब भी शक्ति ज्योंकी त्यों है। वह जो मूल स्वरूप है उसमें लाभ-हानिका कोई प्रसंग नहीं है, उसमें लाभ-नुकसानकी कोई गुँजाईश नहीं है कि उसमें कोई लाभ हो या उसमें कोई नुकसान हो। लाभ और नुकसान आत्माकी अवस्थामें शान्ति-अशान्ति, सुख और दुःखको गिननेमें आता है। अवस्थामें दुःख होना वह नुकसान और अवस्थामें आत्मिक सुख प्रगट होना वह लाभ। लेकिन वह विषय मर्यादित है अवस्था पर्यंत, अवस्था तक मर्यादित है। मूल वस्तु स्वरूपको देखनेवालेको अवस्था गौण है। अवस्था गौण है अर्थात् अनुभवरूप होने पर भी मानों वह देखता नहीं।

यह अव्यक्तके बोलमें ४९वीं गाथामें यह विषय लिया है। व्यक्त और अव्यक्त मिश्रितरूपसे प्रतिभासित होने पर भी अर्थात् द्रव्य सामान्य और वर्तमान पर्याय एकसाथ युगपद् प्रमाणज्ञानमें अनुभवगोचर होने पर भी जो व्यक्त प्रति उदासीन है, वह अव्यक्त है। ऐसे लिया है। अव्यक्तका बोल लिया है। जो व्यक्त अवस्था प्रति उदासीन है। जो अपने प्रगट आनन्दकी दशा प्रति भी उदासीन है, ऐसा कहना है। वह अव्यक्त है। ऐसा एक द्रव्य सामान्यका कि जो श्रद्धाका विषय है, वह जबरजस्त विषय है। उसका निरूपण ऐसी विभिन्न शैलीसे आया है परमागमोंमें और खास कर अध्यात्म विषयक ग्रन्थोंमें अध्यात्मके प्रकरणमें यह विषय ऐसी विभिन्न शैली-से आया है कि वह शैली भी गज़ब आयी है। भिन्न-भिन्न अनुभवीओंने, आचार्योंने, सम्यग्दृष्टिओंने उस विषयको श्रद्धाके अत्यंत ज़ोर-से भाषामें व्यक्त किया है।

‘और अवस्था प्रकट हुयी तब भी शक्ति

ज्योंकी त्यों है... अवस्था प्रगट हुयी अर्थात् शुद्ध अवस्था प्रगट हुयी। सम्यग्दर्शनकी शुद्ध अवस्था प्रगट हुयी, वहाँ-से लेकर सिद्ध पर्यंतकी शुद्ध अवस्था प्रगट हुयी, शक्ति ज्योंकी त्यों है। **‘ऐसी श्रद्धा सुखका मूल है।’** कैसी शैली की है दीपचंदजीने! ऐसी जो शक्तिकी श्रद्धा कि मेरी शक्ति सदा अनादिअनन्त ज्योंकी त्यों है, ऐसी जो शक्तिकी श्रद्धा वह सुखका मूल है। भगवानकी दिव्यध्वनिमें शक्तिका प्रकरण चले और उस शक्तिका सम्यक् भावभासन न हो तो ये सब शक्ति पूजा करने लग जाता है।

क्या कहते हैं? कि इस जगतका मूल शक्ति है। ये करते हैं न? माताजीकी पूजा। शक्ति करके। वह सब वहाँ-से निकला है। भगवानकी वाणी समझमें नहीं आयी और भ्रम हुआ इसलिये शक्ति नाम तो स्त्रीलिंग है। भाषाका जो पद है, उसमें तीन पदे हैं न? पुरुष, स्त्री और नपुंसक। उसमें शक्ति स्त्रीलिंग है इसलिये स्त्रीकी छबी रख दी। जैसे भारत माता स्त्रीकी छबी बनायी, ऐसे। फिर वह चला, चलिये, उसकी पूजा करो, उसके पास तलवार रखो। भाई! वह सब गड़बड़वाली बात है। ऐसा नहीं है।

शक्तिको, श्रद्धाके जोरमें अत्यंत प्रशंसासे, अत्यंत महिमासे शक्तिका गुणानुवाद किया जाता है। क्योंकि वह मूल स्वरूप है, वस्तुका वह असल स्वरूप है, वह मूल स्वरूप है। और सर्वोत्कृष्ट पद है। परन्तु उसे यथार्थपने समझनेकी बात है। नहीं तो ये जो शक्ति पूजाका जो चला वह सब गड़बड़वाली बात खड़ी हो जाय। ये सब इसमें-से ही निकला है। जितने अन्यमत हुए हैं, वह सब दिव्यध्वनिको सुनकर ३६३, इस कालकी चौबीसीके प्रथम तीर्थकर आदिनाथ हुए, जैसे ही दिव्यध्वनि निकली, प्रगट हुयी कि ३६३ पाखण्ड उत्पन्न हो गये। वह विभ्रम-से हुए। ऐसा क्यों? कोई कहता है कि मैं कहता हूँ ऐसा भगवान कहते हैं, ये कहता है, मैं कहता हूँ वैसा भगवान कहते हैं, वह कहता है, मैं कहता हूँ ऐसा भगवान कहते हैं। हम शक्तिकी महिमा ही करते हैं।

उसके पहले यहाँ जुगलियाका क्षेत्र था। जितने जुगलिया मनुष्य यहाँ थे, वे सब मरकर देवलोकमें जाते हैं। यहाँका आयुष्य पूर्ण करे इसलिये उसकी तिर्यचगति भी नहीं होती और उसकी नर्कगति भी नहीं होती, पुनः वे मनुष्य नहीं होते। देवलोकमें जाते हैं। दो गति ही थी। यहाँ मनुष्यगतिमें थे और देवगतिमें जाते थे। इस क्षेत्रमें दो ही गति थी। जहाँ भगवानकी वाणी छूटी तो चारों गति खुल गयी। ठीक! पंचम मोक्षगति भी खुल गयी। कोई मोक्षमें नहीं जाते थे। जुगलियामें मोक्ष जानेका कोई प्रश्न नहीं है। कोई सम्यग्दृष्टि नहीं होता, सब मिथ्यादृष्टि ही होते हैं।

भगवानकी वाणीमें मोक्षमार्ग ऐसा खुला, वैसा सामने अपेक्षित बंधमार्ग भी खुल गया। नर्कमें जानेवाले जीवोंकी योग्यता थी वे सीधा उछले और चिल्लाने लगे, ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता। विरोध करनेवाले भी निकले और अनुसरण करनेवाले भी निकले। पंचमगतिमें जानेवाले भी प्रगटरूपसे परिणमन करने लगे और नर्कमें जानेवाले भी प्रगटरूपसे परिणमन करने लगे। ऐसा ही कोई वस्तु व्यवस्थाका प्रकार जगतमें है। सत्के सामाने असत् खड़ा होता है और असत्के सामाने सत् खड़ा होता है। ऐसा क्यों? वह कोई प्रश्नका विषय नहीं है। ऐसी कोई वस्तुव्यवस्था है।

क्या कहते हैं? कि **‘ऐसी श्रद्धा सुखका मूल है।’** जो श्रद्धा केवलज्ञानकी पर्यायके भेदको देखती नहीं और जो श्रद्धा द्रव्यके भेदको भी देखती नहीं। अथवा जिसका भेद करनेका धर्म नहीं है ऐसी श्रद्धा, श्रद्धाका प्रकार ऐसा है कि उसमें भेद करनेका धर्म नहीं है। अभेदपने एकाकार होकर अपने विषयके साथ अभेदपने एकाकार होकर श्रद्धाका परिणमन करनेका धर्म है। इस प्रकार जब श्रद्धा स्वरूपके साथ परिणमती है, स्वरूपके साथ परिणमती है तब मूलमें-से सुख उत्पन्न होता है और अनन्त सुखरूप उसका फल आता है। यह श्रद्धा उसका मूल है ऐसा कहना है। सुखका मूल है। (समय हुआ है)।



धार्मिक कार्यक्रम

सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई के वार्षिक समाधिदिन पर तीन दिवसीय धार्मिक कार्यक्रम निम्नोक्त स्थान पर आयोजित किया गया है। चैत्र सुदी ३, मंगलवार दि.२०-३-२०१८ से चैत्र सुदी ५, गुरुवार दि.२२-३-२०१८ पर्यंत जिनमंदिर में मंडलविधान रखा गया है। एवं 'शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर' में प्रातः ७.०० से ८.०० पूज्य भाईश्री शशीभाई का सीडी प्रवचन, दोपहर ४.०० से ५.०० गुणानुवाद, रात ८.०० से ९.०० पूज्य भाईश्री शशीभाई का वीडियो प्रवचन एवं भक्ति रखी गई है। दि.२२-३-२०१८, चैत्र सुदी ५ के दिन सुबह ४.०० बजे 'शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर' में भक्ति एवं दो मिनट का मौन रखा जायेगा। तत्पश्चात ७.०० से ८.०० प्रवचन और बाद में पूज्य भाईश्री के समाधि स्थल पर भक्ति रखी गई है। इस प्रसंग पर आनेवाले मुमुक्षुओं के लिए आवास एवं भोजन व्यवस्था निःशुल्क रखी गई है। आनेवाले मुमुक्षु भाई-बहनों से विनम्र सूचन है की वे अपने आने कि सूचना पहले से दे, ताकि उनके आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था हो सके।

संपर्क :- श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर, फोन : (०२७८) २५१५००५

नवीन प्रकाशन

अध्यात्म सुधा भाग-१०

पूज्य बहिनश्रीके वचनमृत ग्रन्थ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा हुए प्रवचनोंका पुस्तक 'अध्यात्म सुधा भाग-१०' पूज्य भाईश्रीकी ८५वीं जन्म जयंति प्रसंग पर प्रकाशित किया गया है। जिन मुमुक्षु भाई-बहनोंको स्वाध्याय अर्थ मंगवाना हो वे ट्रस्टके कार्यालयमें संपर्क करके मंगवा सकते हैं।

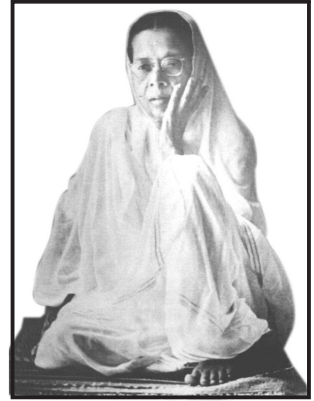
अध्यात्म सुधा भाग-११-१२

पूज्य बहिनश्रीके वचनमृत ग्रन्थ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा हुए प्रवचनोंका पुस्तक 'अध्यात्म सुधा भाग-११ एवं १२' पूज्य बहिनश्रीकी आगामी सम्यक्त्व जयंति महोत्सव दिनांक ११-३-२०१८के दिन प्रकाशित करनेकी भावना है।

संपर्क :- वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाड़ी, भावनगर-३६४००१

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (फरवरी-२०१८) का शुल्क बेलाबहेन महेन्द्रकुमारजी जैन, भावनगर के नाम से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

पूज्य बहिनश्री की तत्वचर्चा



प्रश्न :- द्रव्य निष्क्रिय किस प्रकार है?

समाधान :- स्वयंकी अपेक्षा द्रव्य निष्क्रिय है। प्रत्येक गुणका कार्य पर्यायमें आता है। ज्ञानगुणका कार्य ज्ञानरूप और आनंदगुणका कार्य आनंदरूप आता है। प्रत्येक गुणका कार्य आता ही रहता है। केवलज्ञानीको केवलज्ञान होनेपर लोकालोक ज्ञात होते हैं वह कार्य ज्ञानका है। और केवलज्ञानी आनंदरूप परिणमता रहता है वह कार्य आनंदका है। उस अपेक्षासे द्रव्य सक्रिय है; परंतु वह वैसा सक्रिय नहीं है कि वह स्वयं सर्व प्रकारसे-सर्वथा-क्रियात्मक हो जाय। अनादि-अनंत द्रव्य स्वयं अपनी अपेक्षासे निष्क्रिय है और पर्याय अपेक्षासे सक्रिय है, सर्वथा निष्क्रिय नहीं है।

मुमुक्षु :- जो दृष्टि का विषय बनता है वह द्रव्य, सर्वथा निष्क्रिय है-ऐसा लेना चाहिये?

बहिनश्री :- हाँ; जो दृष्टिका विषय बनता है वह द्रव्य, एकसमान निष्क्रिय रहता है। जिसमें कोई फेरफार नहीं है, जो अनादि-अनंत एकसा रहता है और जिसका नाश नहीं है, वैसा द्रव्य अनादि-अनंत निष्क्रिय है। आत्मा द्रव्य अपेक्षासे निष्क्रिय और पर्याय अपेक्षासे सक्रिय है। यदि वह अकेला निष्क्रिय हो तो उसमें केवलज्ञानकी, मुनिदशाकी पर्याय नहीं हो सकती, इसलिये आत्मा पर्याय अपेक्षासे सक्रिय है और द्रव्य-अपेक्षासे निष्क्रिय है। आत्मा सर्वथा शून्य नहीं है; जागृतितवान तथा कार्यशील है; परंतु द्रव्य-अपेक्षासे निष्क्रिय है। अपना स्वभाव सुरक्षित ज्यों का त्यों नित्य ध्रुवरूप रहता है इसलिये निष्क्रिय है। आत्मा पर्याय अपेक्षा कार्यशील है; क्योंकि यदि आनंद आनंदरूप कार्य प्रगट न करे तो आनंदगुण किस प्रकार कहलाये? यदि उसमें किसी प्रकारकी क्रिया न हो तो जाननेका, शांतिका, पुरुषार्थ पलटनेका कार्य ही न हो अर्थात् कोई कार्य ही नहीं हो।-इसलिये आत्मद्रव्य सर्वथा निष्क्रिय नहीं है; तथापि द्रव्य एकसमान-ज्यों का त्यों-ध्रुवरूप रहता है, इसलिये परमपारिणामिकभावसे निष्क्रिय भी है। पर्याय किसी अपेक्षासे पारिणामिकभावरूप भी है, क्योंकि वह किसीकी अपेक्षा नहीं रखती, स्वतंत्र परिणमती है, उपशमादिभावोंमें किसीकी अपेक्षा लागू नहीं होती इसलिये उस अपेक्षासे पर्याय पारिणामिकभावस्वरूप है; परंतु यह पर्याय है इसलिये सक्रिय है।

(स्वानुभूतिदर्शन-६०९)



प्रश्न :- दृष्टिका बल किसके ऊपर होता है? और अधिक बल किसका?-दृष्टिका या ज्ञानका?

समाधान :- दृष्टिका जोर एक सामान्य पर ही है और ज्ञान सामान्य-विशेष दोनों को जानता है। जाननेमें भेद आता है। दृष्टिमें जो सामान्यका बल आता है वैसा बल ज्ञानमें नहीं आता। दृष्टि बलवान है और वह एक सामान्यको ग्रहण करती है; वह एक सामान्य पर जोर देकर आगे बढ़ती है कि अनादि-अनंत चैतन्य सामान्य सो मैं हूँ। उसकी दृष्टि गुण-पर्यायके भेद पर भी नहीं है, वह तो एक सामान्य चैतन्य-अस्तित्व जो कि ज्ञायक है सो मैं-ऐसा स्वीकार करती है। इसप्रकार जैसा दृष्टिका बल है वैसा ज्ञानका बल नहीं है; क्योंकि ज्ञान सामान्य-विशेष दोनोंको जानता है। ज्ञान यथार्थ हो तो परिणति यथार्थ होती है, किन्तु दृष्टि अधिक बलवान है। दृष्टिमें बल है, क्योंकि दृष्टिने संपूर्ण सामान्यको ग्रहण किया है।

मुमुक्षु :- दृष्टि मूल्यवान है?

बहिनश्री :- हाँ; दृष्टि मूल्यवान है।

मुमुक्षु :- दृष्टि जो कार्य करती है वह ज्ञात तो ज्ञानमें होता है?

बहिनश्री :- ज्ञानमें ज्ञात होता है परंतु दृष्टि बलवान है, जोरदार है। एक सामान्यपर दृष्टि स्थापित करनेसे (स्वरूपमें) लीनता होती है। जैसे किसी मनुष्यने ऐसा निर्णय किया हो कि मुझे इस प्रकार यह एक ही कार्य करना है, तो फिर वह उस एक कार्यके सिवा आसपासका दूसरा कुछ नहीं देखता और दृढ़तापूर्वक अपना कार्य करता है; वैसे ही एकके बाद एक बीचमें सब भेद आते हैं, परंतु उन पर दृष्टि न देकर सामान्य एक आत्मा पर ही दृष्टि देनेपर उसके बलसे लीनताकी परिणति प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- ज्ञानमें भी ऐसा बल आता है?

बहिनश्री :- ज्ञानमें सब जानना आता है। यद्यपि ज्ञानमें बल आता है परंतु दृष्टिमें अधिक बल आता है। ज्ञानमें सब पहलूओंको जाननेका कार्य होता है कि यह अधूरा है, यह पूरा है; यह केवलज्ञान है; यह साधकदशा है; यह गुणभेद है, यह पर्यायभेद है; इसप्रकार ज्ञान सब जानता है तथा एक अखंडका बल भी ज्ञानमें है, तथापि वह जाननेरूप है। जिसने एक सामान्यको ही ग्रहण किया है वह दृष्टि अधिक बलवान है।

(स्वानुभूतिदर्शन-६१०)



प्रश्न :- पुरुषार्थ कैसे करें?

समाधान :- यदि रुचिकी उग्रता हो तो पुरुषार्थ हुए बिना नहीं रहता। 'रुचि अनुयायी वीर्य'-रुचि जिस ओर जाये उस ओरका पुरुषार्थ होता ही है; परंतु अपनी रुचि मंद हो तो पुरुषार्थ नहीं उठता। हो रहा है, होगा-ऐसे अपनेको लगता रहे परंतु उग्र भावना न हो तब तक पुरुषार्थ नहीं होता। रुचि उग्र हो उसे बाहर रुकना अच्छा नहीं लगे; प्रतिक्षण आत्माकी लगन लगी रहे, दिन-रात कहीं चैन न पड़े-ऐसा अंतरमें हो तो अपना पुरुषार्थ उग्र हो; परंतु मंद-मंद रहा करता है इसलिये आगे नहीं बढ़ सकता।

मुमुक्षु :- रुचिके जोरसे अंतरसन्मुख पुरुषार्थ होता है?

बहिनश्री :- रुचि उग्र हो तो अंतरसन्मुख पुरुषार्थ सहज होता है। रुचि अपनी ओर हो तो पुरुषार्थ भी स्वसन्मुख होता है।

मुमुक्षु :- तो फिर पुरुषार्थ करना नहीं रहा, किंतु रुचि करनी रहती है?

बहिनश्री :- दोनोंका संबंध है; रुचि हो तो पुरुषार्थ भी साथ होता ही है।

मुमुक्षु :- दोनोंमें मुख्यता किसकी है?

बहिनश्री :- मुख्यता रुचिकी होती है।

मुमुक्षु :- रुचि खूब गहराईसे जागृत करनेके लिये क्या करें?

बहिनश्री :- स्वयं अकारण पारिणामिक द्रव्य है, इसलिये रुचि अपनेको ही करनेकी है। यह स्वभाव ही आदरणीय है, विभाव आदरणीय नहीं है। विभावमें सुख नहीं है; उसके साथ एकत्वबुद्धि करना यह मिथ्या-अयथार्थ है। यथार्थ आत्मतत्त्व विभावसे जुदा होनेपर भी उसमें (विभावमें) एकत्व मान रहा हूँ वह मिथ्या माना है, विपरीत माना है-इसप्रकार यथार्थ ज्ञानपूर्वक निश्चय करके, स्वयं रुचिको दृढ़ करता रहे। ज्ञान, रुचि, पुरुषार्थ-सबको संबंध है; इसलिये यथार्थ ज्ञानसे निश्चय करना चाहिये कि बाह्यमें कहीं सुख नहीं है, आत्मामें सुख है। दो तत्त्व जुदे हैं। यह विभावतत्त्व जुदा है और मेरा आत्मतत्त्व जुदा है-ऐसे निश्चित करके रुचिका बल बढ़ाना चाहिये।

(स्वानुभूतिदर्शन-६११)

कृपालुदेव श्रीमद् राजचन्द्रजी द्वारा व्यक्त हुए पत्र पर विवेचन

ऐसे सम्यक्दर्शनके परम अनुग्रहसे स्वयंको भी स्वस्वरूपमें रुचि हुई है और अपने अनुभवज्ञानमें पूर्ण वीतराग स्वभावका परम निश्चय हुआ है, और पूर्ण कृतकृत्य होनेका मार्ग ग्रहण हुआ है।

श्री वीतराग जिनेश्वरदेवको अत्यंत भक्तिभावसे संबोधन करके नमस्कार किये हैं। क्योंकि उनका भी खुदके ऊपर (परम्परासे) अनंत उपकार है। इस वचनामृतमें जिनेश्वरदेवकी महानताके आगे अपनी पामरताका भी उल्लेख किया है। तत् पश्चात्-

श्री कुन्दकुन्दादि आचार्योंको भी, उनके वचन खुदको स्वरूपअनुसंधान होनेमें अर्थात् आत्मानुभवकी प्राप्तिमें उपकारभूत हुए हैं, इसलिये खुदको पामर गिनाकर, अतिशय भक्तिसे नमस्कार किये हैं। इस वचन पर ऐसा लगता है कि दिग्बर आचार्यों रचित महान परमागमोंके अध्ययनसे इस भवमें, प्रत्यक्ष सद्गुरुका निमित्त नहीं होने पर भी स्वयं को निसर्ग सम्यक्दर्शनकी प्राप्ति हुई है। और इसलिये उपकारी श्रीगुरुके प्रति स्वयंका भक्तिभाव प्रदर्शित किया है। तत्पश्चात् अपने परम मित्र और शिष्य श्री सौभाग्यभाई कि जिनके सत्समागमके निमित्तसे स्वयं को इस भवमें आत्मदशाका स्मरण हुआ और सुविचारणापूर्वक आत्मजागृति चालू हुई। जिसके फलस्वरूप मोक्षमार्गमें प्रवेश हुआ, इसलिये उन्हें भी उपकारी गिनकर नमस्कार किये हैं। यह कृपालुदेवकी लोकोत्तर नम्रता है।

परम कृपालुदेवका लोकोत्तर विनयगुण और उपकारी महात्माके प्रति भक्तिभाव, मुमुक्षुजीवको अनुकरणीय और परम आदरणीय है। इस प्रकारकी नम्रतासे वास्तवमें तो उनकी महानताका ही दर्शन होता है।

धन्य हो उनकी आराधनाको!

परम भक्तिसे नमस्कार हो उनकी साधनाको!

जीव विभावपरिणामसे शून्य है, कब?—तो कहते हैं कि—तीनों काल और तीनों लोकमें। अरे! जिसने अनन्तकालमें त्रसपना भी प्राप्त नहीं किया और भविष्यमें भी त्रसपनेको प्राप्त नहीं होगा ऐसा निगोदका जीव भी विभावके परिणामसे शून्य स्वभावी है। पर्यायमें भले ही कोई प्रकार हो परन्तु जो शुद्ध जीव है वह तो ऐसा ही है। तीन काल और तीन लोक में जो जीव है वह ऐसा ही है, अर्थात् विभावपरिणामसे शून्य शुद्ध जीव है। वर्तमानकालमें शुद्ध है या भविष्यमें होगा तब शुद्ध है—ऐसा नहीं; परन्तु तीनोंकाल भगवानस्वरूप शुद्ध चैतन्य आत्मा है। भले ही पांचम या छठा काल हो और भले ही चाहे कसाई होकर गायोंको काटता हो, परन्तु भीतर जो आत्मा है वह भगवत् स्वरूप शुद्ध है। पर्यायमें चाहे जैसे परिणाम—हुए परन्तु भगवान है वह उनमें आता ही नहीं है। किस दृष्टिसे?—पर्यायदृष्टिसे नहीं भाई! शुद्ध निश्चयकी दृष्टिसे त्रिकाल आनन्दकन्द प्रभु शुद्ध है और वही भूतार्थ है।

(‘द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर पर्यायदृष्टि विनश्चर’ बोल नं.२८२)

आभ्यंतर परिणाम अवलोकन

१८

(संस्मरण पोथी २, पृष्ठ ३९)

‘परानुग्रह परम कारुण्यवृत्तिकी अपेक्षा भी प्रथम चैतन्य जिनप्रतिमा हो। चैतन्य जिनप्रतिमा हो।’

उक्त वचनामृतमें अन्य जीवोंके प्रति कल्याणमें निमित्त होनेकी परम कारुण्यवृत्ति और अन्य जीवोंके प्रति अनुग्रह, इससे भी, निज चैतन्यस्वरूपमें जिनप्रतिमावत् स्वरूप-स्थिरतामें रहनेकी मुख्यता होनेका अभिप्राय प्रदर्शित करके आत्मस्थिरताकी भावना भायी है।

इस परसे ऐसा बोध प्राप्त होता है कि अन्य जीवोंके प्रति कारुण्यवृत्तिपूर्वक धर्मप्रभावनाकी प्रवृत्तिको मुख्यता देकर आत्मश्रेयकी वृत्तिको/पुरुषार्थको गौण करने योग्य नहीं है। निजहित साधनेवाला परहितमें निमित्त हो सकता है। वही यथार्थ प्रकार है। स्वहितको गौण करके परलक्ष्यी धर्म-प्रवृत्ति हो, यह यथार्थ नहीं है।



२०

(संस्मरण-पोथी २, पृष्ठ ४५))

‘हे सर्वोत्कृष्ट सुखके हेतुभूत सम्यग्दर्शन! तुझे अत्यंत भक्तिसे नमस्कार हो!

इस अनादि-अनंत संसारमें अनंत-अनंत जीव तेरे आश्रयके बिना अनंत-अनंत दुःखका अनुभव करते हैं।

तेरे परमानुग्रहसे स्वरूपमें रुचि हुई, परम वीतराग स्वभावके प्रति परम निश्चय हुआ, कृतकृत्य होनेका मार्ग ग्रहण हुआ।

हे जिन वीतराग! आपको अत्यंत भक्तिसे नमस्कार करता हूँ। आपने इस पामरपर अनंत-अनंत उपकार किया है।

हे कुन्दकुन्द आदि आचार्यों! आपके वचन भी स्वरूपानुसंधानमें इस पामरको परम उपकारभूत हुए हैं। इसके लिये मैं आपको अतिशय भक्तिसे नमस्कार करता हूँ।

हे श्री सोभाग! तेरे सत्समागमके अनुग्रहसे आत्मदशाका स्मरण हुआ, उसके लिये तुझे नमस्कार करता हूँ।’

उक्त वचनामृतोंमें सम्यक्दृष्टिसे लेकर वीतराग जिनेश्वर पर्यंत उपकारी महात्माओंके प्रति अत्यंत भक्तिभावसे नमस्कार-वचन लिखे गये हैं।

उसमें प्रथम सम्यक्दर्शनको सर्वोत्कृष्ट सुखका कारणभूत गिनकर नमस्कार किया है। उसमें तीनों कालके सम्यक्दृष्टि धर्मात्माओंके प्रति भक्ति की है। और साथ ही साथ सिद्धांत बताया है कि अनादि अनंत संसारमें अनंत-अनंत जीवोंको सम्यक्दर्शनकी प्राप्ति न होनेसे अनंत दुःख भोगना पड़ता है। अतः यह सिद्ध होता है कि-सम्यक्दृष्टि जीव तीनों लोकमें जहाँ भी हो, वहाँ आत्मसुखको भोगते हैं और अंततः निर्वाणपदके अनंत सुखको प्राप्त करते हैं।

(अनुसंधान पृष्ठ सं.१८ पर...)

